

“दिगंबर जैन” के इसी अंकका क्रोड़पत्र ।

दिगंबरजैनग्रंथमाला नं० ४७

॥ श्रीबीतरागाय नमः ॥

समाधिमरण

और

मृत्युमहोत्सव ।

(पंडित सूरचन्दजी और सदासुखजी कृत)

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया—सूरत ।

प्रथमावृत्ति]

वीर सं० २४४२

[प्रति २२००

सोनासण (प्रांतिज) निवासी गांधी नहालचंद सांकलचंदके
स्वर्गवासी पुत्र जुठाभाईके स्मरणार्थ “दिगंबरजैन” के
ग्राहकोंको नौवें वर्षका छठा उपहार.

“जैनविजय ” प्रेस—सूरत.

मूल्य रु० ०-१-६

॥ कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ॥

॥ अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ॥

॥ गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ॥

॥ योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर (जैन व प्राच्यविद्या शोधसंस्थान एवं ग्रंथालय)

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १३५९



श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249

Websiet : www.kobatirth.org

Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
हॉटल हेरीटेज की गली में
पालडी, अहमदाबाद - ३८०००७
(079) 26582355

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

समाधिमरण भाषा ।

पं० सूरचन्दजी रचित ।



नरेंद्र छन्द ।

बन्दों श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई ।
 इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
 अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमाँही ।
 अन्तसमयमें यह वर माँगूँ, सो दीजे जगराई ॥ १ ॥
 भव भवमें तन धार नये मैं, भव भव शुभ सँग पायो ।
 भव भवमें नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥
 भव भवमें तन पुरुष तनो धर, नारी हू तन लीनो ।
 भव भवमें मैं भयो नपुंसक, आत्मगुण नहिं चीनो ॥ २ ॥
 भव भवमें सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे ।
 भव भवमें गति नरकतनी धर, दुख पाये विधयोगे ॥
 भव भवमें तिर्यच योनि धर, पायो दुख अतिभारी ।
 भव भवमें साधर्मी जनको, संग मिलो हितकारी ॥ ३ ॥
 भव भवमें जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो ।
 भव भवमें मैं समवशरणमें, देखो जिनगुण भीनो ॥

२]

दिगम्बर

एती वस्तु मिली भव भवमें, सम्यक गुण नहीं पायो ।
 ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥ ४ ॥
 काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो ।
 एक बारहू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहीं चीनो ॥
 जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काँई ।
 देहविनासी मैं निजभासी, जोतिस्वरूप सदाई ॥ ५ ॥
 विषय कषायनके वश होकर, देह आपनो जानो ।
 कर मिथ्यासरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछानो ॥
 यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
 सम्यकदर्शन ज्ञान तीन ये, हिरदेमें नहीं लायो ॥ ६ ॥
 अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरणसमय यह माँगों ।
 रोगजनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो ॥
 ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजे ।
 जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजे ॥ ७ ॥
 यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै ।
 चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्ठा पावै ॥
 अति दुर्गंध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढावै ।
 देहविनासी यह अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै ॥ ८ ॥
 यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजे ।
 नूतन महल मिले जब भाई, तब यामें क्या छीजे ॥

समाधिमरण ।

[३]

मृत्यु होनेसे हानि कौन है, याको भय मत लावो ।
 समतासे जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥ ९ ॥
 मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं ।
 जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
 या सेती इस मृत्यु समयपर, उत्सव अति ही कीजै ।
 क्लेशभावको त्याग सयाने, समताभाव धरीजै ॥ १० ॥
 जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई ।
 मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्गसंपदा भाई ॥
 राग द्वेषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई ।
 अन्त समयमें समता धारो, परभवपंथ सहाई ॥ ११ ॥
 कर्म महा दुष्ट बैरी मेरो, तासेती दुख पावे ।
 तन पिंजरेमें बंध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै ॥
 भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढ़े ।
 मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजरेसे काढ़े ॥ १२ ॥
 नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये ।
 गंधसुगन्धित अतर लगाये, पटरस असन कराये ॥
 रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी ।
 सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी ॥ १३ ॥
 मृत्युरायको शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ ।
 जाँपें सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ ॥

४]

दिगम्बर जैन ।

देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं ।
 मृत्युसमयमें ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥ १४ ॥
 यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुर्गतिदाता ।
 इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
 मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती ।
 समता धरकर मृत्यु करौ तौ, पावो संपति तेती ॥ १५ ॥
 चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो ।
 हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्तिमें जावो ॥
 मृत्यु कल्पद्रुम सम नाहिं दाता, तीनों लोक मँझारे ।
 ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥ १६ ॥
 इस तनमें क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है ।
 तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
 पाँचों इंद्रि शिथल भई अब, स्वास शुद्ध नाहिं आवै ।
 तापर भी ममता नाहिं छोड़े, समता उर नाहिं लावै ॥ १७ ॥
 मृत्युराज उपकारी जियको, तनसे तोहि छुड़ावै ।
 नातर या तन बंदीगृहमें, परचो परचो बिललावै ॥
 पुद्गलके परमाणू मिलके, पिंडरूप तन भासी ।
 यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी ॥ १८ ॥
 रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गललारे ।
 मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥

समाधिमरण ।

[५]

या तनसे इस क्षेत्र संबंधी, कारण आन बनो है ।
 खान पान दे याको पोषो, अब समभाव ठनो है ॥ १९ ॥
 मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जानो ।
 इंद्रि भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछानो ॥
 तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
 कुटुम आदिको अपनो जानो, भूल अनादी छाई ॥ २० ॥
 अब निज भेद यथार्थ समझो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी ।
 उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जानो याको रूपी ॥
 इष्टनिष्ट जेते सुखदुख हैं, सो सब पुद्गलसागे ।
 मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुःख भागे ॥ २१ ॥
 बिन समता तन नन्त धरे मैं, तिनमें ये दुःख पायो ।
 शस्त्रघाततैं नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ॥
 बार नन्त ही अग्निमाहिं जर, मूवो सुमति न लायो ।
 सिंह व्याघ्र अहि नन्त बार मुझ, नाना दुःखदिखायो ॥ २२ ॥
 बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई ।
 मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई ॥
 यातैं जबलग मृत्यु न आवै, तबलग जप तप कीजै ।
 जप तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी ना सीजै ॥ २३ ॥
 स्वर्ग संपदा तपसे पावै, तपसे कर्म नसावै ।
 तपहीसे शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै ॥

६]

दिगम्बर जैन ।

अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई ।
 मात पिता सुत बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥
 मृत्यु समयमें मोह करैं ये, तातैं आरत हो है ।
 आरततैं गति नीची पावैं, यों लख मोह तजो है ॥
 और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे प्रीति न कीजे ।
 परभवमें ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे ॥ २५ ॥
 जे जे वस्तु लसत हैं ते पर, तिनसे नेह निवारो ।
 परगतिमें ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो ॥
 जो परभवमें संग चलैं तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजे ।
 पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥ २६ ॥
 दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो ।
 षोडशकारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो ॥
 चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको त्यागो ।
 समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ॥ २७ ॥
 अन्तसमयमें ये शुभ भाव हि, होवैं आनि सहाई ।
 स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई ॥
 खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके ।
 जासेती गति चार दूर कर, वसो मोक्षपुर जाके ॥ २८ ॥
 मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
 ये ही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोऊ नाई ॥

समाधिमरण ।

[७]

आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी ।
 बहू उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥
 तिनमें कहु एक नाम कहूँ मैं, सो मुन जिय चित लाके ।
 भावसहित अनुमोदै तासैं, दुर्गति होय न जाके ॥
 अरु समता जिन उरमें आवैं, भाव अधीरज जावैं ।
 यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच लावैं । ३० ।
 धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी ।
 एक श्यालनी जुग बचाजुत, पाँव भखो दुखकारी ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३१ ॥
 धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो ।
 तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३२ ॥
 देखो गज मुनिके फिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी ।
 शीस जले जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३३ ॥
 सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ट वेदना व्यापी ।
 छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्तो गुण आपी ॥

८]

दिगम्बर जैन ।

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिये कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३४ ॥
 श्रेणिकसुत गंगामें डूबो, तब जिननाम चितारो ।
 धर सलेखना परिग्रह छाँड़ो, शुद्ध भाव उर धारो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३५ ॥
 समैतभद्र मुनिवरके तनमें, क्षुधा वेदना आई ।
 बा दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्तो निजगुण भाई ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३६ ॥
 ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशावीतट जानो ।
 नदीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहि मानो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३७ ॥
 धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो ।
 एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३८ ॥
 श्रीदत्तमुनिको पूर्व जन्मको, बैरी देव सु आके ।
 विक्रिय कर दुःख शीततनो सो, सहो साथ मन लाके ॥

समाधिमरण ।

[९]

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ३९ ॥
 वृषभेसन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई ।
 सूर्य घाम अह उष्ण पवनकी, बेदन सहि अधिकाई ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४० ॥
 अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महा बेदना पाई ।
 बैरी चँडने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४१ ॥
 विद्युत्चरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यांगी ।
 शुभ भावनसे प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४२ ॥
 पुत्र चिलाती नामा मुनिको, बैरीने तन घातो ।
 मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४३ ॥
 दण्डक नामा मुनिको देही, बाणन कर अरि भेदी ।
 तापर नेक ढिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥

१०]

दिगम्बर जैन ।

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४४ ॥
 अभिनंदन मुनि आदि पाँचसे, घानी पेलि जु मारे ।
 तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरव कर्म बिचारे ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४५ ॥
 चाणक मुनि गोघरके माहीं, मुँद अग्निनिपर जालो ।
 श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हालो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४६ ॥
 सात शतक मुनिवर ने पायो, हथनापुरमें जानो ।
 बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४७ ॥
 लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये ।
 पाँचो पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये ॥
 यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
 तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव बारी ॥ ४८ ॥
 और अनेक भये इस जगमें, समता रसके स्वादी ।
 वे ही हमको हो सुखदाता, हर हैं देव प्रमादी ॥

समाधिमरण ।

[११]

सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों ।
 ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥ ४९ ॥
 यों समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो ।
 तज ममता अरु आठों मदको, जोतिस्वरूपी ध्यावो ॥
 जो कोई निज करत पयानो, ग्रामांतरके काजै ।
 सो भी शुक्ल विचारे नीके, शुभ शुभ कारण साजै ॥ ५० ॥
 मात पितादिक सर्व कुटुम सो, नीके शुक्ल बनावै ।
 हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावै ॥
 एक ग्रामके कारण एते, करै शुभाशुभ सारे ।
 जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचै प्यारे ॥ ५१ ॥
 सर्व कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे ।
 ये अपशुक्ल करै सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे ॥
 अब परगतिको चालत विरियाँ, धर्मध्यान उर आनो ।
 चारों आराधन आराधो, मोहतनो दुख हानो ॥ ५२ ॥
 है निशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो ।
 जब परगतिकों करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ॥
 मोह जालको काट पियारे, अपनो रूप विचारो ।
 मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ ५३ ॥

दोहा ।

मृत्युमहोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान ।
 सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द शिवथान ॥ ५४ ॥
 पंच उभय नव एक नभ, सम्बत सो सुखदाय ।
 आश्विन श्यामा सप्तमी, कहौ पाठ मन लाय ॥ ५५ ॥

❧ समाधिमरणभाषा । ❧

जोगीरासा वा नरेन्द्रछन्द ।

गौतम स्वामी वन्दों नामो, मरणसमाधि भला है ।
 मैं कब पाऊँ निशादिन ध्याऊँ, गाऊँ वचन कला है ॥
 देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़, सात व्यसन नहीं जाने ।
 तजि वाईस अभक्ष संयमी, बारह व्रत नित ठाने ॥ १ ॥
 चक्की उखरी चूल्हि बुहारी, पानी ब्रस न विराधै । ब्रनिज
 करै पर द्रव्य हरै नहीं, छहों करम इमि साधै ॥ पूजा
 शास्त्र गुरुनकी सेवा, संयम तप चउदानी । पर उपकारी
 अल्प अहारी, सामायिकविधि ज्ञानी ॥ २ ॥ जाप जपै तिहुं
 योग धरै हृद, तनकी ममता डारै । अन्तसमय वैराग्य
 सम्हारे, ध्यान समाधि विचारै ॥ आग लगै अरु नाव
 डुवै जब, धर्म विघन जब आवै । चार प्रकार आहार
 त्यागिके, मंत्र सु मनमें ध्यावै ॥ ३ ॥ रोग असाध्य जहाँ
 बहु देखै, कारण और निहारै । बात बड़ी है जो बनि
 आवै, भार भवनको डारै ॥ जो न बनै तो घरमें रह
 करि, सबसों होय निराला । मात पिता सुत तियकों
 सोंपै, निज परिग्रह अहि काला ॥ ४ ॥ कछु चैत्यालय
 कछु श्रावक जन, कछु दुखिया धन देई । क्षमा क्षमा
 सबहीसों कहिके, मनकी शल्य हनेई ॥ शत्रुनसों मिलि
 निज कर जोरै, मैं बहु करी है बुराई । तुमसै प्रीतमका

समाधिमरण ।

[१३]

दुख दीने, ते सब बकसो भाई ॥ ५ ॥ धन धरती जो
 मुखसो मांगै, सो सबही संतोषै । छहौं कायके प्राणी ऊपर,
 करुणाभाव विशेषै ॥ ऊँच नीच घर बैठ जगह इक, कछु
 भोजन कछु पैले । दूधाहारी क्रम क्रम तजिकै, छाँछ
 अहार पहेले ॥ ६ ॥ छाँछ त्यागिके पानी राखै, पानी
 तजि संथारा । भूमिमाहिं थिर आसन माँडै, साधमीं ढिंग
 प्यारा ॥ जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनबानी
 पादिये । यों कहि मौन लियौ संन्यासी, पंच परम गद
 गहिये ॥ ७ ॥ चौ आराधन मनमें ध्यावै, बारह भावन
 भावै । दशलक्षण मन धर्म विचारै, रत्नत्रय मन ल्यावै ॥
 पैतीस सोलह षट पन चौ दुइ, एक वरन विचारै । काया
 तेरी दुखकी ढेरी, ज्ञानमई तू सारै ॥ ८ ॥ अजर अमर
 निज गुणसों पूरै, परमानन्द सुभावै । आनंद कन्द चिदा-
 नंद साहब, तीन जगतपति ध्यावै ॥ क्षुधा तृषादिक होइ
 परीषह, सहै भाव सम राखै । अतीचार पाँचों सब त्यागै
 ज्ञान सुधारस चाखै ॥ ९ ॥ हाड़ मांस सब सूखी जाय
 जब, धरम लीन तन त्यागै, । अदभुत पुण्य उपाय सुर-
 गमै, सेज उठै ज्यों जागै ॥ तहँतै आवै शिव पद पावै,
 विलसै सुख अनन्तो । 'द्यानत' यह गति होय हमारी,
 जैन धरम जयवन्तो ॥ १० ॥

१४]

दिगम्बर जैन ।

मृत्युमहोत्सव ।

स्वर्गीय पं. सदासुखजीकृत वचनिका सहित
मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे ।
समाधिबोधौ पाथेयं यावन्मुक्तिपुरी पुरः ॥ १ ॥

अर्थ—मृत्युके मार्गमें प्रवर्त्यो जो मैं ताकू भगवान वीतराग जो है सो समाधि कहिये स्वरूपकी सावधानी अर बोध कहिये पर लोकके मार्गमें उपकारक वस्तु सो देहु जितनैक मैं मुक्ति पुरी प्रति जाय पहुँचूं या प्रार्थना करूं हूं। भावार्थ—मैं अनादिकालतैं अनंत कुमरण किये जिनकूं सर्वज्ञ वीतराग ही जानैं हैं। एकवार हू सम्यक् मरण नहिं किया। जो सम्यक्मरण करता तो फिर संसारमें मरणका पात्र नहिं होता जातैं जहां देह मर जाय अर आत्माका सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्र स्वभाव है सो विषय कषायनिकरि नहीं घात्या जाय सो सम्यक्मरण है अर मिथ्याश्रद्धानरूप हुवा देहका नाशकूं ही अपना आत्माका नाश जानना। संक्लेशतैं मरण करना सो कुमरण है सो मैं मिथ्यादर्शनका प्रभाव करि देहकूं ही आपा मानि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपका घात करि अनंत परिवर्तन किये सो अब भगवान् वीतरागसों ऐसी प्रार्थना करूं हूं जो मेरे मरणके समयमें वेदनामरण तथा आत्मज्ञानरहित मरण मत होइक्योंकि सर्वज्ञ वीत-

मृत्युमहोत्सव ।

[१५]

रागका शरणसहित संक्लेशरहित धर्मध्यानतैं मरण चाहता वीतरागहीका
शरण ग्रहण करूं हूं ॥ १ ॥

अब मैं अपने आत्माकूं समझाऊं हूं,—

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपञ्जरे ।

भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥ २ ॥

अर्थ—भो आत्मन् ! कृमिनिके सैकड़ां जालनिकरि भरचा अर
नित्य जर्जरा होता यो देहरूप पींजरा इसकूं नष्ट होतैं तुम भय मत
करो जातैं तुम तो ज्ञानशरीर हो । भावार्थ—तुमारा रूप तो ज्ञान
है जिसमें ये सकल पदार्थ उद्योतरूप हो रहे हैं अर अमूर्तिक ज्ञान
ज्योतिःस्वरूप अखंड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा है अर यह हाड मांस
चामडाभय महादुर्गंध विनाशीक देह है सो तुमारा रूपतैं अत्यंत भिन्न
है । कर्मके वशतैं एक क्षेत्रमें अवगाहन करि एकसे होय तिष्ठै है तो-
हू तुमारै इनकै अत्यंत भेद है अर यो देह पृथ्वी जल अग्नि
पवनके परमाणुनिका पिंड है सो अवसर पाय बिखर जायगा
तुम अविनाशी अखंड ज्ञायकरूप होय इसके नाश होनेतैं भय कैसे
करो हो ॥ २ ॥ अब और हू कहै है—

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे ।

स्वरूपस्थः पुरं याति देही देहान्तरस्थितिः ॥ ३ ॥

अर्थ—भो ज्ञानिन् ! कहिये हो ज्ञानी तुमको वीतरागी सम्य-

१६]

दिगम्बर जैन ।

ग्ञानी उपदेश करें हैं जो मृत्युरूप महान् उत्सवको प्राप्त होतैं काहेतैं भय करो हो ? यो देही कहिये आत्मा सो अपने स्वरूपमें तिष्ठता अन्य देहमें स्थितिरूप पुरकूं जाय है यामैं भयका हेतु कहा है ? भावार्थ—जैसै कोऊ एक जीर्णकुटीमेंतैं निकसि अन्य नवीन महलकूं प्राप्त होय सो तो बड़ा उत्सवका अवसर है तैसैं यो आत्मा अपने स्वरूपमें तिष्ठता ही इस जीर्ण देहरूप कुटीकूं छांड़ि नवीन देहरूप महलकौं प्राप्त होतैं महा उत्सवका अवसर है यामैं कुछ हानि नहीं जो भय करिये अर जो अपने ज्ञायकस्वभावमें तिष्ठते परका अपणासकरि रहित परलोक जावोगे तो बड़ा आदरसहित दिव्य धातु उपधातुरहित वैक्रियकदेहमें देव होय अनेक महद्भिकनिमें पूज्य महान देव होवोगे अर जो यहां भयादिक करि अपना ज्ञानस्वभावकूं ब्रिगाड़ि परमें ममता धारि मरोगे तो एकेन्द्रियादिकका देहमें अपने ज्ञानका नाश करि जड़रूप होय तिष्ठोगे, ऐसैं मलीन क्लेशसहित देहकूं त्यागि क्लेशरहित उज्ज्वल देहमें जाना तो बड़ा उत्सवका कारण है ॥ ३ ॥

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद् दृश्यते पूर्वसत्तमैः ।

भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतीः कुतः सताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—पूर्वकालमें भए गणधरादि सत्पुरुष ऐसैं दिखावैं हैं जो जिस मृत्युतैं भलेप्रकार दिया हुवाका फल पाइये अर स्वर्गलोकका

मृत्युमहोत्सव ।

[१७]

सुख भोगिये तातै सत्पुरुषकै मृत्युका भय काहेतैं होय । भावार्थ— अपना कर्तव्यका फल तो मृत्यु भये ही पाइए है जो आप छयकायके जीवनिकुं अभयदान दिया अर रागद्वेष काम क्रोधादिकका घातकरि असत्य अन्याय कुशील परधनहरणका त्यागकरि परमसंतोष धारण- करि अपने आत्माकुं अभयदान दिया ताका फल स्वर्गलोक विना कहां भोगनमें आवै सो स्वर्गलोकके सुख तो मृत्यु नाम मित्रके प्रसा- दतैं ही पाइए तातैं मृत्यु समान इस जीवका कोऊ उपकारक नाहीं । यहां मनुष्य पर्यायका जीर्ण देहमें कौन २ दुःख भोगता कितने काल रहता आर्तध्यान रौद्रध्यानकरि तिर्यंच नरकमें जाय पड़ता तातैं अब मरणका भय अर देह कुटुंब परिग्रहका ममत्वकरि चिंतामणि कल्पवृक्ष समान समाधिमरणकुं बिगाड़ि भयसहित समतावान हुवा कुमरणकरि दुर्गति जावना उचित नाहीं ॥४॥ और हू विचारै है—

आगर्भादुःखसंतप्तः प्रक्षिप्तो देहपञ्चरे ।

नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्युभूमिपतिं विना ॥ ५ ॥

अर्थ—यो हमारो कर्म नाम वैरी मेरा आत्माकुं देहरूप पींजरेमें क्षेप्या सो गर्भमें आया तिस क्षणमें सदाकाल क्षुधा तृष्णा रोग वियोग इत्यादि अनेक दुःखनिकरि तप्तायमान हुवा पड़्या हूं अब ऐसे अनेक दुःखनिकरि व्याप्त इस देहरूप पींजरातैं मोकुं मृत्यु नाम राजा विना कौन छुड़ावै । भावार्थ—इस देहरूप पींज-

१८]

दिगम्बर जैन ।

मेमैं कर्मरूप शत्रुकरि पटक्या मैं इंद्रियनिके आधीन हुवा नाना त्रास
 सँढूँ हूँ नित्य ही क्षुधा अर तृषाकी वेदना त्रास देवै है अर सासती
 स्वास उच्छ्वासकी पवनका खेंचना अर काढ़ना अर नाना प्रकारके
 रोगनिका भोगना अर उदर भरनै वास्तै नाना पराधीनता अर
 सेवा कृषि वाणिज्यादिकनिकारि महा क्लेशित होय रहना अर शीत
 उष्ण दुष्टनि करि ताड़न मारन कुवचन अपमान सहना कुटुंबके
 आधीन होना धनकै राजाकै स्त्री पुत्रादिककै आधीन रहना ऐसा
 महान् बंदीगृह समान देहमेतैं मरण नाम बलवान राजा विना कौन
 निकसै ? इस देहकूँ कहां ताँई बाहता जाकूँ नित्य उठावना बैठावना
 भोजन करावना जल पावना स्नान करावना निद्रा लिवावना कामादिक
 विषयसाधन करावना नाना प्रकारके वस्त्र आभरणादिकरि भूषित करना
 रात्रि दिन इस देहहीका दासपना करता हूँ आत्माकूँ नाना त्रास
 देवै है भयभीत करै है आपा मुलावै है ऐसा कृतघ्न देहतैं निकसना
 मृत्यु नाम राजा विना नहीं होय जो ज्ञानसहित देहसों ममता
 छांड़ि सावधानीतैं धर्मध्यानसहित संकेशरहित वीतरागतापूर्वक जो
 समाधिमृत्यु नाम राजाका सहाय ग्रहण करूँ तो फेरि मेरा आत्मा
 देह धारण ही नहीं करै दुःखनिका पात्र नहीं होय समाधिमरण
 नामा बड़ा न्यायमार्गी राजा है मोकूँ याहीका शरण होहूँ मेरे अप-
 मृत्युका नाश होहूँ ॥ ९ ॥ और हूँ कहै हैं—

मृत्युमहोत्सव ।

[१२]

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं दूरीकृत्वात्मदर्शिभिः ।

मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्यन्ते सुखसम्पदः ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्मदर्शी जे आत्मज्ञानी हैं ते मृत्युनाम मित्रका प्रसादकरि सर्व दुःखका देनेवाला देहपिण्डकूं दूर छांडकरि सुखकी संपदाकूं प्राप्त होय हैं। भावार्थ—जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देहकूं छांड़ि दिव्य वैक्रियक देहमें प्राप्त होय नाना सुख संपदाकूं प्राप्त होय है सो समस्त प्रभाव आत्मज्ञानीनिकै समाधि-मरणका है समाधिमरण समान इस जीवका उपकार करनेवाला कोऊ नहीं है इस देहमें नाना दुःख भोगना अर महान रोगादि दुःख भोगि करि मरना फिर तिर्यंच देहमें तथा नरकमें असंख्यात अनंत कालतांई असंख्यात दुःख भोगना अर जन्ममरणरूप अनंत परिवर्तन करना तहां कोऊ शरण नाहीं। इस संसार परिभ्रमणसों रक्षा करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है कदाचित् अशुभकर्मका मंद उदयतैं मनुष्यगति उच्चकुल इंद्रियपूर्णता सतपुरुषनिका संगम भगवान् जित्तेन्द्रका परमागमका उपदेश पाया है। अब जो श्रद्धान ज्ञान त्याग संयमसहित समस्त कुटुंब परिग्रहमें ममत्वरहित देहतैं भिन्न ज्ञाकस्वभावरूप आत्माका अनुभवकरि भयरहित च्यार आराधनाका शरण सहित मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें तीन कालमें इस जीवका हित है नाहीं। जो संसार परिभ्रमणतैं छूट जाना सो समाधिमरण नाम मित्रका प्रसाद है ॥ ६ ॥

२०]

दिगम्बर जैन ।

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्यो न साधितः ।

निमग्नो जन्मजम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥ ७ ॥

अर्थ—जो जीव मृत्यु नाम कल्पवृक्षकूं प्राप्त होतैं हू अपना कल्याण नाहीं सिद्ध किया सो जीव संसाररूप कर्दममें डूबा हुआ पाछैं कहा करसी ? भावार्थ—इस मनुष्य जन्ममें मरणका संयोग है सो साक्षात् कल्पवृक्ष है जो वांछित लेना है सो लेहु जो ज्ञानसहित अपना निजस्वभाव ग्रहणकरि आराधनासहित मरण करो तो स्वर्गका महर्द्धिकपणा तथा इन्द्रपणा अहमिन्द्रपणा पाय पाछैं तीर्थकर तथा चक्रीपणा होय निर्वाण पावो । मरणसमान त्रैलोक्यमें दाता नहीं ऐसे दाताकूं पायकरि भी जो विषयकी वांछा कषाय सहित ही रहोगे तो विषयवांछाका फल तो नरक निगोद है । मरण नाम कल्पवृक्षकूं बिगाड़ोगे तो ज्ञानादि अक्षयनिधानरहित भए संसाररूप कर्दममें डूब जावोगे अर भो भव्य हो जो थं वांछाका मारया हुआ खोटे नीच पुरुषनिका सेवन करो हो अतिलोभी भए विषयनिके भोगनेकूं धन वास्तै हिंसा झुठ चोरी कुशील परिग्रहमें आसक्त भये निन्द्यकर्म करो हो अर वांछा पूर्ण हू नहीं होय अर दुःखके मारे मरण करो हो कुटुम्बादिकनिकूं छांड़ि विदेशमें परिभ्रमण करो हो निन्द्य आचरण करो हो अर निन्द्यकर्म करिकै हू अवश्य मरण करो हो अर जो एकबार हू समता धारण करि त्यागव्रत-

मृत्युमहोत्सव ।

[२१]

महित मरण करो तो फेरि संसारपरिभ्रमणका अभावकरि अविनाशी सुखकूं प्राप्त हो जावो तातैं ज्ञानसहित पंडितमरण करना ही उचित है ॥ ७ ॥

जीर्ण देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः ।

स मृत्युः किं न मोदाय सतां सातोत्थितिर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस मृत्युतैं जीर्ण देहादिक सर्व छूटि नवीन हो जाय सो मृत्यु सत्पुरुषनिकै साताका उदयकी ज्यों हर्षके अर्थि नहीं होय कहा ? ज्ञानीनिकै तो मृत्यु हर्षके अर्थि ही है । भावार्थ—यो मनुष्यनिको शरीर नित्य ही समय समय जीर्ण होय है देवनिका देह ज्यों जरारहित नहीं है दिन दिन बल घटै है कांति अर रूप मलीन होय है स्पर्श कठोर होय है समस्त नसनिके हाड़निके बंधान शिथिल होय हैं चाम ढीली होय मांसादिकनिकूं छांड़ि ज्वरलीरूप होय है नेत्रनिकी उज्ज्वलता बिगड़ै है कर्णनिमें श्रवण करनेकी शक्ति घटै है हस्तपादादिकनिमें असमर्थता दिन दिन बधै है गमनशक्ति मंद होय है चालतेबैठते उठते स्वास बधै है कफकी अधिकता होय है रोग अनेक बधै हैं ऐसी जीर्ण देहका दुःख कहां तक भोगता अर ऐसे देहका श्रीसणा कहां तक होता ? मरण नाम दातार विना ऐसे निंद्यदेहकूं छुडाय नवीन देहमें वास कौन करावै ? जीर्ण देह है तिसमें बड़ा

२२]

दिगम्बर जैन ।

असाताका उदय भोगिये है सो मरण नाम उपकारी दाता बिना ऐसी असाताकूं दूर कौन करै अर जे सम्यग्ज्ञानी हैं तिनकै तो मृत्यु होनेका बड़ा हर्ष है जो अब संयम व्रत त्याग शीलमें सावधान होय ऐसा यत्न करै जो फेरि ऐसे दुःखका भरचा देहको धारण नहीं होय? सम्यग्ज्ञानी तो याहीकूं महा साताका उदय मानै है ॥ ८ ॥

सुखं दुःखं सदा वेचि देहस्थश्च स्वयं व्रजेत् ।

मृत्युभीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥ ९ ॥

अर्थ—यो आत्मा देहमें तिष्ठतो हूँ सुखकूं तथा दुःखकूं सदा काल जनै ही है अर परलोकप्रति हूँ स्वयं गमन करै है तो परमार्थतें मृत्युका भय कौनकै होय । भावार्थ—जो अज्ञानी बहिरात्मा है सो तो देहमें तिष्ठता हूँ मैं सुखी मैं मरूं हूँ मैं क्षुधावान मैं तृषावान मेरा नाश हुआ ऐसा मानै । अर अंतरात्मा सम्यग्दृष्टी ऐसै मानै है जो उपज्या है सो मरैगा पृथ्वीजलअग्निपवनमय पुद्गलपरमाणुनिके पिंडरूप उपज्यो यो देह है सो विनशैगो । मैं ज्ञानमय अमूर्तीक आत्मा मेरा नाश कदाचित् नहीं होय । ये क्षुधातृषावातपित्तकफादिरोगमय वेदना पुद्गलकै हैं मैं इनका ज्ञाता हूँ मैं यामैं अहंकार वृथा करूं हूँ । इस शरीरकै अर मेरे एक क्षेत्रमें तिष्ठनेरूप अवगाह है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है अर शरीर जड़ है,

मृत्युमहोत्सव ।

[२३]

मैं अमूर्तीक, देह मूर्तीक, मैं अखंड एक हूं, शरीर अनेक परमाणु-निका पिंड है, मैं अविनाशी हूं, देह विनाशीक है अब इस देहमें जो रोग तथा तृषादि उपजै तिसका ज्ञाता ही रहना मेरा तो ज्ञायक स्वभाव है परमें ममत्व करना सो ही अज्ञान है मिथ्यात्व है अरु जैसे एक मकानकूँ झाँड़ि अन्य मकानमें प्रवेश करै तैसें मेरे शुभ अशुभ भावनकरि उपजाया कर्मकरि रच्यो अन्य देहमें मेरा जाना है इसमें मेरा स्वरूपका नाश नहीं अब निश्चयकरि विचारतैं मरणका भय कौनकै होय ॥ ९ ॥

संसारसक्तचित्तानां मृत्युभीत्यै भवेन्नृणां ।

मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनां ॥ १० ॥

अर्थ—संसारमें जिनका चित्त आसक्त है अपना रूपकूँ जे जानै नहीं तिनके मृत्यु होना भयके अर्थि है अरु जे निजस्वरूपके ज्ञाता हैं अरु संसारतैं विरागी हैं तिनकै तो मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है । भावार्थ—मिथ्यादर्शनके उदयतैं जे आत्मज्ञानकरि-रहित देहहीकूँ आपा माननेवाले अरु खावना पीवना कामभोगादिक इंद्रियनिकै विषयनिकूँ ही सुख माननेवाले बहिरात्मा हैं तिनके तो अपना मरण होना बड़ा भयके अर्थि है जो हाय ! मेरा नाश भया फेरि खावना पीवना कहाँ दू नहीं है नहीं जानिये मेरे पीछें कहाँ होखगा कैसे मरूँगा अब यह देखना मिलना कुटुंबका समागम सब

२४]

दिगम्बर जैन ।

मेरे गया अब कौनका शरण ग्रहण करूँ कैसें जीऊँ ऐसे महा संक्लेश करि मरै हैं अर जे आत्मज्ञानी हैं तिनकै मृत्यु आये ऐसा विचार उपजै है जो मैं देहरूप बंदीगृहमैं पराधीन पड़्या हुवा इंद्रियनिके विषयनिकी चाहनाकी दाह करि अर मिले विषयनिकी अतृप्तिताकरि अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगनिकरि उपजी महा वेदना तिनकरि एक क्षण दू थिरता नहीं पाई, महान दुःख पराधीनता अपमान घोर वेदना अनिष्टसंयोग इष्टवियोग भोगता महा संक्लेशतैं काल व्यतीत किया अब ऐसें क्लेश झुड़ाय पराधीनतारहित मेरा अनंत-सुखस्वरूप जन्ममरणरहित अविनाशी स्थानकूं प्राप्त करनेवाला यह मरणका अवसर पाया है यो मरण महासुखको देनेवालो अत्यंत उपकारक है अर यो संसारवास केवल दुःखरूप है यामैं एक समाधि-मरण ही शरण है और कहुं ठिकाना नहीं है इस बिना च्यारों गतिनिमैं महा त्रास भोगी है अब संसारवासतैं अति विरक्त मैं समाधिमरणका शरण ग्रहण करूँ ॥ १० ॥

पुरार्थीशो यदा याति सुकृतस्य बुभुत्सया ।

तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्चभौतिकैः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस कालमैं यो आत्मा अपना कियाका भोगनेकी इच्छाकरि परलोककूं जाय है तदि पंचभूत संबंधी देहादिक प्रपंचनिकरि याकूं कौन रोके ? भावार्थ—इस जीवका वर्तमान आयु पूर्ण

मृत्युमहोत्सव ।

[२५]

हो जाय अर जो अन्य परलोकसंबंधी आयुकायादिक उदय आ जाय तदि परलोककूं गमन करते आत्माकूं शरीरादिक पंचभूत कोऊ रोकनैकूं समर्थ नहीं हैं तातैं बहुत उत्साहितैं चार आराधनाका शरण ग्रहणकरि मरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

मृत्युकाले सतां दुःखं यद्भवेद्वाधिसंभवं ।

देहमोहविनाशाय मन्ये शिवमुखाय च ॥ १२ ॥

अर्थ—मृत्युका अवसरविषै जो पूर्वकर्मका उदयतैं विनाशीक दीखै है अर देहका कृतघ्नपणा प्रकट दीखै है तदि अविनाशी पदके अर्थि उद्यमी होय है वीतरागता प्रगट होय है तदि ऐसा विचार उपजै है जो इस देहकी ममताकरि मैं अनंतकाल जन्ममरण नाना वियोग रोग संतापादिक नरकादिक गतिनिमैं दुःख भोग अब भी ऐसे दुःखदाई देहमें ही फेरि हू ममत्वकरि आपाकूं भूलि एकेंद्रियादि अनेक कुयोनिमैं भ्रमणका कारण कर्म उपार्जन करनेकूं ममता करूं हूं जो अब इस शरीरमें ज्वर काम श्वास शूल वात पित्त अतीसार मंदाग्नि इत्यादिक रोग उपजैं हैं सो इस देहमें ममत्व घटावनेके अर्थि बड़ा उपकार करैं हैं धर्ममें सावधानता करावैं हैं । जो रोगादिक नहीं उपजता तो मेरी ममता हू देहतैं नहीं घटती अर मद हू नहीं घटता, मैं तो मोहकी अंधेरीकरि आंधा हुवा आत्माकूं अजर अमर मान रखा था सो अब यो रोगनिकी उत्पत्ति मोकूं चेत कराया अब इस देहकूं अशरण

२६]

दिगम्बर जैन ।

जानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपहीकूं एक निश्चय शरण जानि
 आराधनाका धारक भगवान परमेष्ठीकूं चित्तमें धारणकरूं हूं ।
 अब इस अवसरमें हमारें एक जिनेंद्रका वचनरूप अमृत ही परम
 औषधि होहू, जिनेंद्रका वचनामृत विना विषयकषायरूप रोगजनित
 दाहके मेटनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं। बाह्य औषधादिक तो असाता
 कर्मके मंद होते किंचित् काल कोऊ एक रोगकूं उपशम करै अर यो
 देह अनेक रोगनिकरि भरचा हुवा है अर कदाचित् एक रोग मिट्या
 तो हू अन्य रोगजनित घोर वेदना भोगि फेरि हू मरण करना ही
 पड़ैगा तातैं जन्मजरामरणरूप रोगकूं हरनेवाला भगवानका उपदेशरूप
 अमृतहीका पान करूं अर औषधादि हजारों उपाय करते हू विनाशीक
 देहमें रोग नहीं मिटैगा तातैं रोगतैं आर्ति उपजाय कुगतिका कारण
 दुर्ध्यान करना उचित नहीं। रोग आवते हू बड़ा हर्ष ही मानो जो
 रोगहीके प्रभावतैं ऐसा जीर्ण गल्या हुवा देहतैं मेरा छूटना होयगा
 रोग नहीं आवै तो पूर्वकृत कर्म नहीं निर्जरै अर देहरूप महा दुर्गंध
 दुःखदाई बंदीगृहतैं मेरा शीघ्र छूटना हू नहीं होय अर यो रोगरूप
 मित्रको सहाय ज्यों ज्यों देहमें बधै है त्यों त्यों मेरा रागबंधनतैं
 अर कर्मबंधनतैं अर शरीरबंधनतैं छूटना शीघ्र होय है अर यो
 रोग तो देहमें है इस देहकूं नष्ट करैगा मैं तो अमूर्तिक
 चैतन्यस्वभाव अविनाशी हूं ज्ञाता हूं अर जो यो रोगज-

मृत्युमहोत्सव ।

[२७]

नित दुःख मेरे जाननेमें आवे है सो मैं तो जाननेवाला ही हूँ याकी लार मेरा नाश नहीं है जैसे लोहकी संगतितैं अग्नि हूँ घणनिका घात सहै है तैसें शरीरकी संगतितैं वेदनाका जानना मेरे हूँ है अग्नितैं झंपड़ी बलै है झंपड़ीके माहिं आकाश नहीं बलै है तैसें अविनाशी अमूर्तिक चैतन्य धातुमय आत्मा ताका रोगरूप अग्निकरि नाश नहीं है अर अपना उपजाया कर्म आपकूँ भोगना ही पड़ैगा कायर होय भोगूंगा तो कर्म नहीं छंडैगा अर धैर्य धारणकरि भोगूंगा तो कर्म नहीं छंडैगा तातैं दोऊ लोकका बिगाड़नेवाला कायरपनाकूँ धिक्कार होहूँ कर्मका नाश करनेवाला धैर्य ही धारण करना श्रेष्ठ है। अर हे आत्मन्! तुम रोग आए एते कायर होते हो सो विचार करो नरकनिमें यो जीव कौन कौन त्रास भोगी असंख्यात बार अनंत बार मारे बिदारे चीरे फाड़े गये हो इहां तो तुमारै कहा दुःख है अर तिर्यंच गतिके घोर दुःख भगवान ज्ञानी हूँ वचनद्वारकरि कहनेकूँ समर्थ नाहीं अर मैं तिर्यंच पर्यायमें पूर्वे अनंतबार अग्निमें बलि बलि मरचा हूँ अर अनंत बार जलमें डूबिं, डूबि मरचा हूँ अनंत बार सिंह व्याघ्र सर्पादिकनिकरि बिदारचा गया हूँ शस्त्रनिकरि छेद्या गया हूँ अनंत बार शीतवेदनाकरि मरचा हूँ अनंतबार उष्णवेदनाकरि मरचा हूँ अनंत बार क्षुधाकी वेदनाकरि मरचा हूँ अब यह रोगजनित वेदना केतीक है? रोग ही मेरा उपकार

२८]

दिगम्बर जैन ।

करै है । रोग नहीं उपजता तो देहतैं मेरा स्नेह नहीं घटता अर सम-
स्ततैं छूटि परमात्माका शरण नहीं ग्रहण करता तातैं इस अवसरमें
जो रोग है सोहू मेरा आराधनामरणमें प्रेरणा करनेवाला मित्र है
ऐसैं विचारता ज्ञानी रोग आये क्लेश नहीं करै है, मोहके नाश
करनेका उत्सव ही मानै है ॥ १२ ॥

ज्ञानिनोऽमृतसङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन् ।

आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥ १३ ॥

अर्थ—यद्यपि इस लोकमें मृत्यु है सो जगतके आतापका
करनेवाला है तो हू सम्यग्ज्ञानीकै अमृतसंग जो निर्वाण ताके अर्थि
है । जैसे काचा बड़ाकूं अग्निमें पकावना है सो अमृतरूप जलके धार-
णके अर्थि है जो काचा बड़ा अग्निमें नहीं पकै तो बड़ामें जल
धारण नाहीं होय है अग्निमें एक वार पकि जाय तो बहुत काल
जलका संसर्गकूं प्राप्त होय तैसें मृत्युका अवसरमें आताप समभावनि-
करि एक वार सहि जाय तो निर्वाणका पात्र हो जाय । भावार्थ—
अज्ञानीकै मृत्युका नामतै भी परिणाममें आताप उपजै है जो मैं
अब चाल्या अब कैसें जीऊं कहा करूं कौन रक्षा करै ऐसे संतापकों
प्राप्त होय है क्योंकि अज्ञानी तो बहिरात्मा है देहादिक बाह्य वस्तुकूं
ही आत्मा मानै है अर ज्ञानी जो सम्यग्दृष्टी है सो ऐसा मानै है
जो आयु कर्मादिकका निमित्ततै देहका धारण है सो अपनी स्थिति

मृत्युमहोत्सव ।

[१९]

पूर्ण भये अवश्य विनशैगा मैं आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वभाव हूं जीर्ण देह छांड़ि नवीनमें प्रवेश करते मेरा कुछ विनाश नाहीं है ॥ १३ ॥

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडंबनात् ।

तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना ॥ १४ ॥

अर्थ,—यहां सत्पुरुष हैं ते व्रतनिका बड़ा खेदकरि जिस फलकूं प्राप्त होइये है सो फल मृत्युका अवसरमें थोरे काल शुभ-ध्यानरूप समाधिमरणकरि सुखतैं साधने योग्य होय है । भावार्थ—जो स्वर्गमें इंद्रादिक पद वा परंपराय निर्वाणपद पंच महाव्रतादिक गौर तपश्चरणादिककरि सिद्ध करिये है सो पद मृत्युका अवसरमें जो देह कुटुंबादिमूं ममता छांड़ि भयरहित हुवा वीतरागता सहित च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण करि कायरता छांड़ि अपना ज्ञायक स्वभावकूं अवलंबनकरि मरण करै तो सहज सिद्ध हो तथा स्वर्गलो-केमें महद्विक देव होय तहांतैं आय बड़ा कुलमें उपजि उत्तम संह-ननादि सामग्री पाय दीक्षा धारण करि अपने रत्नत्रयकी पूर्णताकूं प्राप्त होय निर्वाण जाय है ॥ १४ ॥

अनार्तः शान्तिमान्मर्त्यो न तिर्यग् नापि नारकः ।

धर्मध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनीत्वमरेश्वरः ॥ १५ ॥

अर्थ,—जाकै मरणका अवसरमें आर्त्त जो दुःखरूप परिणाम नहीं होय अर शान्तिमान कहिये रागरहित द्वेषरहित समभावरूप

३०]

दिगम्बर जैन ।

चित्त हो सो पुरुष तिर्यच नहीं होय नारकी नहीं होय अर जो धर्मध्यानसहित अनशनव्रत धारण करके मैरे सो तो स्वर्गलोकमें इंद्र होय तथा महर्द्धिक देव होय अन्य पर्याय नहीं पावै ऐसा नियम है । भावार्थ—यो उत्तम मरणको अवसर पाय करिकैं आराधना-सहित मरणमें यत्न करो अर मरण आवते भयभीत होय परिग्रहमें ममत्व धारि आर्त्त परिणामनिसों मरणकरि कुगतिमें मत जावो । यो अवसर अनंतभवनिमें नहीं मिलैगा अर मरण छांड़ेगा तातैं सावधान होय धर्मध्यानसहित धैर्य धारणकरि देहका त्याग करो ॥ १५ ॥

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च ।

पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥१६॥

अर्थ,—तपका संताप भोगनेका अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढ़नेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना है । भावार्थ,—हे आत्मन् ! जो तुम इतने काल इंद्रियनिके विषयनिमें बांछारहित होय अनशनादि तप किया है सो अनंतकालमें आहारादिकनिका त्यागसहित संयमसहित देहकी ममतारहित समाधिमरणके अर्थ किया है अर जो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमें ममताका त्याग करि समस्त मनवचनकायतैं आरंभादिक त्यागकरि समस्त शत्रू मित्रनिमें वैर राग छांड़करि उपसर्गमें धीरता धारणकरि अपना एक

मृत्युमहोत्सव ।

[३१]

ज्ञायकस्वभावको अवलंबनकरि समाधिमरण करनेके अर्थ किये हैं अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू संक्षेपशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनिर्ते भिन्न आपकूं जानि मयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनकरि काल व्यतीत किया है अर मरणका अवसरमें हू ममता भय राग द्वेष कायरता दीनता नहीं छांडोगे तो इतने काल तप कीने व्रत पाले श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होंयगे तातैं इस मरणके अवसरमें कदाचित् सावधानी मत बिगाड़ो ॥ १६ ॥

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः ।

चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः ॥ १७ ॥

अर्थ—लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अति-परिचय अतिसेवन हो जाय तिसमें अवज्ञा अनादर होजाय है रुचि गटि जाय है अर नवीनका संगममें प्रीति होय है यह बात प्रसिद्ध है अर हे जीव ! तू इस शरीरको चिरकालसे सेवन किया अब याका नाश होते अर नवीन शरीरका लाभ होतें भय कैसें करो हो भय करना उचित नहीं । भावार्थ,—जिस शरीरकुं बहुतकाल भोगि जीर्ण कर दीना साररहित बलरहित हो गया अर नवीन उज्ज्वल देह धारण करनेका अवसर आया अब भय कैसें करो हो ? जीर्ण देह तो विनसैहीगो इसमें ममता धारि मरण बिगाड़ि दुर्गतिका कारण कर्मबंध मत करो ॥ १७ ॥

६२]

दिगम्बर जैन ।

शार्दूलविक्रीडितम् ।

स्वर्गादेत्य पवित्रनिर्मलकुले संस्मर्यमाणा जनै-

र्दत्त्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनं ।

भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,

पात्रावेशविसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥ १८ ॥

अर्थ—ऐसैं जो भयरहित होय समाधिमरणमें उत्साहसहित चार आराधनानिकूं आराधि मरण करै है ताकै स्वर्गलोग बिना अन्य गति नहीं होय है स्वर्गनिमें महर्धिक देव ही होय है ऐसा निश्चय है बहुरि स्वर्गमें आयुका अंतपर्यंत महासुख भोगि करिकै इस मनुष्यलोकविषै पुण्यरूप निर्मल कुलमें अनेक लोयनिकरि चिंतवन करते करते जन्म लेय अपने सेवकजन तथा कुटुंब परिवार मित्रादि जन-निकूं नाना प्रकारके वांछित धन भोगादिरूप फल देय अर पुण्यकरि उपजे भोगनकूं निरंतर भोगि आयु प्रमाण थोड़े काल पृथ्वीमंडलमें संयमादि सहित वीतरागरूप भये तिष्ठ करके जैसै नृत्यके अखाड़ेमें नृत्य करनेवाला पुरुष लोकनिकै आनंद उपजाय निकल जाय है तैसैं वह सत्पुरुष सकल लोकनिकै आनंद उपजाय स्वयमेव देह त्यागि निर्वाणकूं प्राप्त होय है ॥ १८ ॥

दोहा ।

मृत्यु महोत्सव वचनिका, लिखी सदासुखकाम ।

शुभ आराधन मरण करि, पाउं निज सुख धाम ॥ १ ॥

उगणीसै ठारै शुक्ल, पंचमि मास अषाढ ।

पूरण लिखि बांचो सदा, मन धरि सम्यक गाढ ॥ २ ॥



सोनासण (प्रांतिज) निवासी गांधी नहालचंद सांकलचंदके पुत्र जुठाभाईका स्वर्गवास सं० १९६९ चैत्र वदी १४ को सिर्फ सवा वर्षकी आयुमें हुआ था। उनके स्मरणार्थ शास्त्रदानके लिये कुछ रकम निकाली गई थी। उस रकमसे 'दिगंबरजैन' के ग्राहकोंको 'समाधिमरण' ग्रन्थ उपहारमें देनेकी हमें सूचना मिली थी जिससे यह ग्रन्थ 'दिगंबरजैन' के ग्राहकोंको नौवें वर्षका छठा उपहारस्वरूप वितरण किया जाता है। आशा है कि ऐसे शास्त्रदानका अनुकरण हमारे अन्य भाई भी करेंगे।

Serving JinShasan



प्रकाशक ।

Printed by
'Jain Vijay'
chakra,



016102

gyanmandir@kobatirth.org

apadia at his
Khapatia-
SURAT.

Published by Moolchand Kisondas Kapadia from
Khapatia chakra, Chhandawadi-SURAT.